गढवाल में नाग पूजा परम्परा: एक अध्ययन

उदय प्रकाश
शोधार्थी, इतिहास विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड, भारत
Correspondence Author: उदय प्रकाश

Received 1 Apr 2026; Accepted 12 May 2026; Published 29 May 2026
DOI: https://doi.org/10.64171/JSRD.5.S3.75-78

सारांश
उत्तराखण्ड के गढ़वाल हिमालय की धार्मिक–सांस्कृतिक परम्पराओं में नागपूजा का विशिष्ट स्थान है। यह परम्परा केवल आस्था या विश्वास का परिणाम नहीं, बल्कि यह प्रकृति, पर्यावरण, सामाजिक संरचना और ऐतिहासिक चेतना से गहराई से जुड़ी हुई है। गढ़वाल क्षेत्र में नागदेवता को जल, भूमि, वर्षा, उर्वरता, रोग–निवारण और ग्राम–सुरक्षा से सम्बन्धित देवता माना जाता है। यहां नाग केवल एक जीव मात्र नहीं, बल्कि 'क्षेत्रपाल' या 'ग्राम–देवता' के रूप में पूजनीय है। गढ़वाल की 'जागर' गायन परम्परा में 'नागराज' के अवतरण और उनके सांस्कृतिक प्रभाव की भी इस शोधपत्र में विवेचना की गई है। नागपूजा की परम्परा वैदिक, पौराणिक तथा लोकधाराओं के समन्वय से विकसित हुई है। पुराणों में वर्णित नागपूजा की यह परम्परा वर्तमान में भी उतनी ही प्रासंगिक है, जितनी पूर्व में थी।
प्रस्तुत शोधपत्र में गढ़वाल क्षेत्र में नागपूजा के उद्भव, ऐतिहासिक विकास, पौराणिक एवं लोकाधार, प्रमुख नागदेवताओं और उनके मन्दिरों, अनुष्ठानों, पर्वों तथा सामाजिक–सांस्कृतिक और पर्यावरणीय महत्व का विश्लेषण किया गया है।

मूलशब्द: गढ़वाल, नागपूजा, लोकधर्म, लोकदेवता, नागराजा, जागर

परिचय

भारत की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति मे प्रकृति–पूजा की परम्परा अत्यन्त प्राचीन रही है। पर्वत, नदी, वृक्ष, पशु और सर्प सभी को किसी न किसी रूप में देवत्व प्रदान किया गया। नाग या सर्प पूजा इसी परम्परा का एक महत्वपूर्ण अंग है। नागपूजा भारतीय लोक धर्म का एक जीवंत रूप है। भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में नागपूजा का अत्यन्त प्राचीन स्थान रहा है। वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक नाग को शक्ति, संरक्षण और रहस्य का प्रतीक माना गया है।

हिमालय को स्पर्श करता उत्तराखण्ड का गढ़वाल क्षेत्र न केवल अपनी नैसर्गिक सुन्दरता के लिए विख्यात है, बल्कि यह आदि काल से ही 'देवभूमि' के रूप में आध्यात्मिक चेतना का केन्द्र रहा है। अपनी दुर्गम भौगोलिक संरचना, प्राकृतिक संसाधनों और समृद्ध लोकसंस्कृति के लिए जाने जाने वाले गढ़वाल हिमालय में नागपूजा आज भी लोकधर्म के रूप में जीवित है। गढ़वाल में नागदेवता को ग्राम–देवता, क्षेत्रपाल और कुलदेवता के रूप में पूजा जाता है। यहां की लोक–संस्कृति में प्रकृति और परमात्मा का अटूट सम्बन्ध दिखाई देता है, जिसका एक जीवंत उदाहरण 'नागपूजा' की सुदीर्घ परम्परा है। यह परम्परा केवल धार्मिक आस्था तक सीमित नहीं, बल्कि कृषि व्यवस्था, जल–स्रोतों की रक्षा, वन संरक्षण और सामाजिक अनुशासन से भी जुड़ी हुई है।

भारतीय वांगमय और पौराणिक ग्रन्थों, विशेषकर स्कन्दपुराण के 'केदारखण्ड' में हिमालयी क्षेत्रों को नागों के निवास स्थान के रूप में वर्णित किया गया है। सेम–मुखेम के दिव्य नागराज से लेकर डाण्डा नागराज की चोटियों तक, यहां की हवाओं में नागगाथाओं और जागरों की गूंज आज भी सुनाई देती है।

उत्तराखण्ड गढ़वाल में ऐसा कोई क्षेत्र नहीं जहां कृष्ण के रूप में पूजे जाने वाले नागों के मन्दिर न हों। यहां वैष्णव मन्दिर नागराजा मन्दिर कहे जाते हैं जिसका कारण यह है कि गढ़वाल में नागराजा एवं विष्णु अर्थात् भगवान कृष्ण को एक ही माना जाता है। अतः कहा जा सकता है कि यहां भगवान कृष्ण की नागराजा के नाम से पूजा की जाती है।

शोध प्रविधि

यह शोध ऐतिहासिक एवं वर्णनात्मक पद्धति पर आधारित है। इसमें प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया गया है। प्राथमिक स्रोतों में लोककथाएं, जनश्रुतियां, क्षेत्रीय परम्पराएं एवं मन्दिर–स्थल शामिल हैं, जबकि द्वितीयक स्रोतों में ऐतिहासिक ग्रन्थ, शोधपत्र, पत्रिकाएं तथा लोकसंस्कृति सम्बन्धी अध्ययन सम्मिलित हैं।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य गढ़वाल की इस प्राचीन नागपूजा परम्परा के उद्भव, ऐतिहासिक विकास, पौराणिक आधार, लोक परम्पराओं, मन्दिरों, अनुष्ठानों तथा सामाजिक–सांस्कृतिक महत्व को समझना है। यह अध्ययन इस बात पर भी प्रकाश डालता है कि किस प्रकार यह परम्परा पारिस्थितिक सन्तुलन और जल–स्रोतों के संरक्षण में अपनी महती भूमिका निभाती आई है।

नागपूजा का उद्भव एवं विकास

मानवजाति के धार्मिक इतिहास पर यदि हम दृष्टि डालें तो पाते हैं कि इसमें प्राचीन काल से ही विभिन्न पशु–पक्षियों एवं प्रकृति के उपादानों यथा नदी, जलस्रोतों की पूजा विद्यमान रही है। नाग प्रारम्भ से ही मानव–समाज में रहस्य, रोमांच के साथ ही भयजनित सृष्टि करने वाले के रूप में देखे जाते रहे हैं। नाग चूंकि सभी जन्तुओं में रहस्यमय रहा एवं मानव की दैनिक गतिविधियों में उससे सामना होता रहा, सम्भवतः इसी कारणः नागपूजा का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। नागपूजा का एक प्रमुख कारण सर्पदंश का भय भी रहा है। मानवीय गतिविधियों में सर्प से आमना–सामना होना एक आम बात है। माना

जा सकता है कि सर्पदंश के निवारणार्थ नाग पूजा का प्रचलन हुआ हो। मैत्रायणी संहिता में सर्पदंश के भय का उल्लेख मिलता है।[1] बौद्ध ग्रन्थों में भी सर्पदंश के निवारणार्थ नाग पूजा का संकेत मिलता है। जिसमें भगवान बुद्ध अनेक स्थानों पर भिक्षुओं को सर्प दंश से मुक्त रहने हेतु नागों के राजकुलों की पूजा करने को कहते हैं।[2] इससे माना जा सकता है कि नाग पूजा के उद्भव की पृष्ठभूमि में सर्पदंश का भय भी एक महत्वपूर्ण कारक रहा होगा। नागों को प्रसन्न रखने के लिए पूजा–उपासना की जाती थी जिसने कालान्तर में नाग–पूजा का रूप ले लिया।

विश्व के प्रत्येक धर्म में नागों को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। यदि हम नाग पूजा की बात करें तो माना जाता है कि विश्व में सर्वप्रथम यूफ्रेटिस नदी की घाटी के दलदली क्षेत्र में तूरानियन जाति में नाग–पूजा का प्रचलन हुआ। फर्ग्यूसन के अनुसार वेद और बाइबल दोनों में नागपूजा के मूलतत्वों का अभाव है। वहीं तूरानियन जातियों में इस प्रकार की किसी भी पूजा का विरोध नहीं पाया जाता। फिर इसी तूरानियन जाति से नागपूजा का प्रचलन एशिया की अन्य जातियों में हुआ है।[3] प्राचीन मिस्र में नागों की पूजा के विधिवत साक्ष्य उपलब्ध हैं।[4] मिस्र में देवी इसीस को जीवन तथा आरोग्य दायिनी देवी माना जाता था तथा सर्प का सम्बन्ध भी इसी देवी से माना गया है। प्राचीन मिश्रवासियों ने देवी इसीस की कल्पना गृहपालिका देवी के रूप में की थी तथा उसे शिशु राजकुमारों का पालन पोषण करते हुए भी चित्रित किया गया है। इस देवी द्वारा पोषित होने का उद्देश्य आरोग्य तथा सौभाग्य प्राप्ति से था। [5] इसके अतिरिक्त पश्चिमी अफ्रीका में भी सर्प को न केवल पवित्र माना जाता है, अपितु इसकी पूजा भी की जाती है। दक्षिणी अमेरिका महाद्वीप के मैक्सिको और पेरू के मन्दिरों की स्थापत्य कला में नागों का चित्रण किया गया है। इसी प्रकार उत्तरी अमेरिका के ओहियो में तथा अन्यत्र एक हजार फुट तक लम्बे अति प्राचीन सर्पीले टीले मिले हैं। [6]

प्राचीन चीन में दैत्य के रूप में नाग की पूजा होती थी। वहां के राष्ट्रध्वज में दैत्य रूप में सर्प को दर्शाया गया है। चीनी परम्परा में नाग अच्छाई का प्रतीक है। वह मानव जाति का महान हितैषी, कल्याण प्रदाता एवं शुभकारक है। मिस्र, चीन तथा कम्बोडिया में इसे कल्याण का प्रतीक माना गया है। जापान में सन्तानदाता देव के रूप में नाग देवता की पूजा की जाती थी। नागासाकी में पाये जाने वाले श्वेत सर्पों को वहां देवदूत के रूप में पूजा जाता था। कोरिया में भी सर्पों को खिलाने तथा पूजने की प्रथा है। रोम में वर्ष मे एक दिन हेरा के मन्दिर में बालिकाएं सर्पों को केक अर्पित करती हैं। यदि सर्प केक खा लेते हैं तो उसे वर्ष भर के लिए उस नगर का सौभाग्य सूचक माना जाता है। प्राचीन यूनान में भी नागों को धार्मिक महत्व प्राप्त था, वहां के साहित्य में सिकन्दर महान की माता को नागदेव से उत्पन्न बताया गया है। नेपाल में प्रचलित एक लोक कथा में एक भयंकर दुर्भिक्ष से त्राण पाने के लिए नौ मुख्य नागों की पूजा का उल्लेख मिलता है। तिब्बत में यह माना जाता है कि तालाबों, झीलों तथा नदियों की रक्षा नागों द्वारा की जाती है तथा तिब्बतियों की यह भी मान्यता है कि नागराज अपने निवास हेतु जल–तल में शीशमहल का निर्माण करते हैं। तिब्बतियों की इस कल्पना और भारतीय साहित्य में उपलब्ध नागलोक की कल्पना में बड़ा साम्य प्रतीत होता है। सम्भवतः तिब्बतियों की कल्पना का आधार भारतीय परम्परा ही है।[7] फर्ग्यूसन के अनुसार मानव इतिहास में जहां भी हमें नागों का परिचय मिलता है, आध्यात्मिक रूप में उन्हें सभी जगह स्वास्थ्य तथा भाग्य का प्रतीक माना गया है।[8] जहां एक ओर फर्ग्युसन नाग पूजा का उद्भव यूफ्रेटिस नदी घाटी में मानते हैं वहीं स्टेनीलैन्ड एक विकसित धार्मिक प्रथा के रूप में नागपूजा का उद्भव मध्यएशिया से मानते हैं। [9] किन्तु उक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि नागपूजा का प्रचलन प्रायः विश्व के सभी भागों में किसी न किसी रूप में प्राचीन काल से विद्यमान था। अतः कहा जा सकता है कि पृथ्वी के प्रत्येक भाग में नाग पूजा किसी न किसी रूप में की जाती रही है।

भारत में नागपूजा

भारतीय संस्कृति में नागपूजा का विशेष महत्व है। भारत में नाग प्राचीन काल से देवता के रूप में पूजित है। नागपूजा हिन्दू समाज में आज भी उतनी ही व्यापक है, जितनी प्राचीन काल में। भारतीय जनमानस में नागों की पूजा विभिन्न रूपों में की जाने की परम्परा रही है। नागों की पूजा कहीं क्षेत्र देवता अथवा क्षेत्रपाल के रूप में की जाती है तो कहीं ग्राम देवता और न्याय के देवता के रूप में। भारतीय साहित्य तथा लोकविश्वासों में मुख्य रूप से शेषनाग, वासुकि नाग तथा तक्षक नाग का महत्वपूर्ण स्थान है।

ब्राह्मण परम्परा में दो नाग अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। एक शेषनाग और दूसरा नागों का राजा वासुकि। शेष नाग क्षीर सागर में भगवान की शैय्या के रूप में रहते हैं तथा समस्त पृथ्वी को अपने फण पर धारण किये हुये हैं। वहीं वासुकि नागराज शिवजी के गले में हार के रूप में विद्यमान रहते हैं। [10]

शेषनाग के बारे में कहा जाता है कि ये नागों की माता कद्रू के पुत्र थे तथा जब नागों की माता कद्रू के कहने पर उनके अन्य पुत्र गलत ढंग से अपनी मां का साथ देने के लिए तैयार हो गये, तब शेषनाग अपने भाइयों से अलग होकर तपस्या करने चले गये। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने वर मांगने के लिए कहा तो शेषनाग ने न्याय परता शान्ति एवं तपस्या में लीन रहने का वर मांगा। इससे प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उन्हें पृथ्वी का भार भी वहन करने का आदेश दिया। [11] माना जाता है कि तब से यह पृथ्वी शेषनाग के फण पर टिकी हुई है।

भारतीय लोक संस्कृति के धार्मिक जीवन में नागपूजा एक महत्वपूर्ण अंग है। प्राचीन काल में नाग देवता के उत्सव को नागमह कहा जाता था। नागों के सम्मान में होने वाले मेले या यात्राएं, नागयात्रा या नागजात्रा कही जाती थी तथा नागों के लिए दी जाने वाली पूजा–सामग्री और बलि नागबलि कहलाती थी। [12]

गढ़वाल में नागपूजा की परम्परा

उत्तराखण्ड के गढ़वाल क्षेत्र में नागपूजा की परम्परा विशेष रूप से प्रचलित है। यहां नागपूजा की परम्परा कब से प्रारम्भ हुई, किसके द्वारा प्रारभ की गयी इसका कोई स्पष्ट साक्ष्य नहीं है। माना जाता है कि प्राचीन काल में यहां के शासक नागवंशी थे, जो नाग पूजक थे। [13] प0 हरिकृष्ण रतूड़ी ह्वीलर के कथन का सन्दर्भ देते हुए बताते हैं कि नाग जाति अलकनन्दा घाटी में निवास करती थी। यह जाति नागपूजक थी। [14] कालान्तर में नाग जाति के वैष्णव प्रभाव में आने के कारण नाग पूजा को वैष्णव पूजा का रूप दिया गया। आज सम्पूर्ण गढ़वाल क्षेत्र में नाग पूजा वैष्णव पूजा के रूप में की जाती है अर्थात् नाग देवता के नाम से कृष्ण भगवान की पूजा की जाती है। नाग देवता की पूजा नागराजा नाम से की जाती है जिसे स्थानीय बोली में नागरजा (नागर्जा) कहा जाता है। कहीं–कहीं नगेला नाम से भी नाग देवता की पूजा की जाती है।

एटकिन्सन ने उल्लेख किया है कि गढ़वाल में अनेक वैष्णव मन्दिरों को नागराजा मन्दिर या नागराजा मन्दिरों को वैष्णव मन्दिर बतलाया गया है, क्योंकि गढ़वाल में नागराजा व विष्णु (कृष्ण) को प्रायः एक

ही मानते हैं। [15] भजनसिंह 'सिंह' के अनुसार गढ़वाल में नागराजा की प्रत्येक गृह में परम्परानुसार यह पूजा प्रतिष्ठा भगवान कृष्ण के जीवन–चरित्र के साथ इस प्रकार एकाकार हो गयी है कि यहां नागराजा कहते ही भगवान कृष्ण का जीवन–वृत्त सम्मुख उपस्थित हो जाता है। गढ़वाल के घर–घर में प्रचलित प्राचीन नागगाथाओं के साथ भगवान कृष्ण की यह परम्परागत अविच्छिन्नता अकारण नहीं हो सकती। [16] उत्तराखण्ड के गढ़वाल मण्डल में भगवान शंकर के बाद जिस देवशक्ति की सर्वाधिक मान्यता है वह है भगवान श्री कृ ष्ण के अवतार के रूप में बहुमान्य नागराजा की। [17] स्पष्टतः गढ़वाल में भगवान कृष्ण नागराजा के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

गढ़वाल में शिव–मन्दिरों के बाद सबसे अधिक संख्या में नागराजा के मन्दिर मिलते हैं। गांव–गांव में नागराजा के मन्दिरों का अस्तित्व देखने को मिलता है। गढ़वाल के आराध्य देव नागराजा के रूप में भगवान कृष्ण को ही मान्यता दी गयी है। जागरी नागराजा को अपने गीतों/जागरों के माध्यम से नचाते हैं। नागराजा का अवतरण किसी व्यक्ति के माध्यम से होता है, जिसे पश्वा कहा जाता है। नागराजा पश्वा के माध्यम से लोगों से संवाद स्थापित कर उनकी विघ्न–बाधाओं के निराकरण का उपाय बतलाता है। [18] नाग–पूजा में गायी जाने वाली जागर का एक रूप इस प्रकार है–

''धरती माता तुमरो ध्यान जागो, श्येली नाग लोक तुमरो ध्यान जागो। बूड़ा वासुकी, जिया जी नागिना, कालू नाग, पिंउला नाग, हुंकार नाग, फुंकार नाग, शिशुनाग, विशुनाग, शिखर का मुरेण, सानगाड़ का नौलिंग जागो।''[19]

नागराजा रूपी कृष्ण गढ़वाली जन जीवन पर पूर्णतः छाए हुए मिलते हैं। पशुधन एवं ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाले एकमात्र देवता के रूप में कृष्ण की गढ़वाल के प्रत्येक गांव में पूजा होती है। [20]

गढ़वाल के प्रमुख नाग मन्दिर एवं नागतीर्थ स्थल

गढ़वाल के जागरों में नागों के बारे मे कथा आती है कि नाग नौ भाई थे व उनकी नौ बहिनें थी, जिन्हें रौतेलियां कहा गया है। जागरों में इनके पिता का नाम वासुकिनाग व माता का नाम जियारानी बताया गया है। [21] गढ़वाल में विभिन्न नामों से नाग मन्दिर हैं जिनमें कुछ प्रमुख मन्दिरों का विवरण निम्नानुसार है–

सेम मुखेम– गढ़वाल का प्रमुख नाग नागतीर्थ सेम–मुखेम है। उत्तराखण्ड के टिहरी जनपद के प्रतापनगर क्षेत्र में स्थित सेम–नागराजा को उत्तराखण्ड का पांचवां धाम भी माना जाता है। मान्यता है कि द्वापर युग में भगवान कृष्ण यात्रा के लिए आये थे तो यह स्थान उन्हें अत्यन्त प्रिय लगा। उस वक्त सेम–मुखेम के सामन्त गंगू रमोला से उन्होंने रहने के लिए जगह मांगी तो गंगू रमोला ने जगह देने से इन्कार कर दिया। जिससे क्रोधित होकर भगवान कृष्ण ने गंगू रमोला की सभी गाय भैंस को पत्थर बना दिया। उसके बाद गंगू रमोला के जगह देने के बाद भगवान कृष्ण नागराज के रूप में यहीं पर स्थापित हो गए। यहां लोकगीतों व जागरों में यह लोकगाथा स्पष्ट झलकती है–

"मन लैगी मेरू तेरीं बांकी रमोली, हे गंगू रमोला मैं जगा दियाल"

नगेलाः नागराजा का दूसरा रूप 'नगेला' कहा गया। गढ़वाल में नगेला कुमाऊं से नेगी बिरादरी के साथ आया। इसको नागेन्द्र भी कहा जाता है। डा0 नैथानी के अनुसार नगेला के बारे में कहा जाता है कि कुमाऊं से नाग उपासक नेगियों के साथ गढवाल चले आने से इसे नगेला कहने लगे। [22] नगेला गद्दीधारी देवता है। इसकी गद्दी लस्या पट्टी के वजिरा गांव में है। [23]

नगेला देवता की 'लस्या थाती वजिरा गादी' की कहावत आज भी प्रसिद्ध है और 'द्यूल नगेल नाचलू' का गीत प्रसिद्ध है। [24]

द्यूल नगेलो आये जशीलो देवता
द्यूल नगेलो आये मुलक लगे धौ
द्यूल नगेलो आये रमोली की थाती
द्यूल नगेलो आये बजरा की गादी
द्यूल नगेलो आये लन्दी देन्द दूध।

डांडा नागराजाः नागराजा का एक अन्य सिद्धपीठ डांडा नागराजा नाग से प्रसिद्ध है, जो पौड़ी मुख्यालय से लगभग 35 किमी0 की दूरी पर स्थित है। यहां लगाई जाने वाली जागर में सबसे पहले 'सेम का नागराजा' कहकर जागर शुरू किया जाता है। इससे इस नागतीर्थ का सेम–मुखेम नागतीर्थ से सम्बन्ध प्रकट होता है। किंवदन्ति के अनुसार लसेरा गांव के गुमाल जाति के परिवार के पास एक गाय थी। वह गाय रोज आकर डांडा की एक शिला के ऊपर दूध की धार डालती थी। परिवार के लोगों को दूध की कमी महसूस हुई और जब उन्होंने गाय का पीछा किया तो पता चला कि गाय एक शिला पर दूध की धार डाल रही है। क्रोध में आकर गाय के स्वामी ने शिला पर प्रहार किया तो शिला दो भागों में विभक्त हो गयी। जिसमें से शिला का एक भाग सेम में जाकर गिरा तथा शिला का दूसरा भाग आज भी डाण्डा नागराजा मन्दिर में स्थित है।

नागदेव मन्दिरः पौड़ी में झंडीधार चोटी में स्थित नागदेव मन्दिर प्रसिद्ध है। यह नागदेव भी गढ़वाल क्षेत्र के प्रसिद्ध नागराजा का एक थान है।

बौखनागः बौखनाग रवांई व दशगी–भण्डारस्यूं क्षेत्र का प्रसिद्ध लोक देवता है। रवांई एवं भण्डारस्यूं के मध्य स्थित पर्वत की चोटी पर इसका मन्दिर स्थित है। यहां हर तीसरे वर्ष मेले का आयोजन होता है। कहा जा सकता है कि सेम मुखेम व बौखनाग में वर्ष वार बारी–बारी से मेले का आयोजन होता है।

वासुकि नाग (भटवाड़ी क्षेत्र)ः भटवाड़ी क्षेत्र के वार्सू नामक गांव में वासुकि नाग का मन्दिर है। मन्दिर के सामने ही एक बड़ा ताल है जिसे वासुकि ताल कहते हैं। माना जाता है कि वासुकि नाग के नाम पर ही इस ग्राम का नाम वार्सू पड़ा। वार्सू के अतिरिक्त बाड़ाहाट पट्टी के गोरसाली, औंगी, मनेरी, हीना, नैताला, गणेशपुर, नाल्ड, गजोली, भंकोली व उत्तरों में भी वासुकी नाग ग्राम देवता है। जिस कारण भागीरथी के दायें पार्श्व के इस क्षेत्र को वासुकी क्षेत्र कहा जाता है।

कालियनाग (नाल्ड कठूड़)ः भागीरथी के वाम पार्श्व स्थित नाल्ड–कठूड़ पट्टी कालियनाग का क्षेत्र है। इसका मुख खीड़ हुर्री, धड़ सालंग तथा पूंछ डिडसारी में मानी जाती है। इसी कारण डिडसारी के डिमरी ब्राह्मणों को जो कि कालिय नाग के पुजारी हैं। उन्हें पुछड़ियाण उपनाम से स्थानीय क्षेत्र में जाना जाता है। बगसारी धनारी स्थित नागणी देवी इसी कालियनाग की छोटी बहिन है। [25]

बनाली नागः इसका मन्दिर टिहरी जनपद की नगुण पट्टी के क्यार्दा गांव में स्थित है। यह नगुण पट्टी के गांवों का आराध्य देवता है। जनश्रुति के अनुसार बनाली नाग देवता उत्तरकाशी जनपद के रवांई क्षेत्र की बनाल पट्टी से आया था जिस कारण इसे बनाली नाग के नाम से जाना जाता है।

सिनालो नागः यह नाग देवता टिहरी जनपद की गुसांई पट्टी का आराध्य देवता है। इसका मन्दिर ग्राम बयूंल में स्थित है। यह देवता रवांई क्षेत्र की बनाल पट्टी के सिन्ना गांव से आया बताते हैं जिस कारण इसका नाम सिनाली नाग हुआ।

गढ़वाल क्षेत्र में नाग आधिपत्य एवं नाग–पूजा परम्परा इससे भी स्पष्ट होती है कि यहां लगभग सभी क्षेत्रों में नाग देवता के मन्दिर एवं नाग स्थान नाम हैं जैसे देहरादून जनपद में नागथात, ऊपरी भागीरथी उपत्यका में स्थित लोहारीनाग, भण्डारस्यूं क्षेत्र में नाग गांव, टिहरी जनपद में नागराजाधार, रुद्रप्रयाग में पुष्करनाग, नागपुर एवं नागनाथ, चन्द्रबदनी के निकट एवं गौचर के सामने नाग गांव आदि।

लगभग सम्पूर्ण गढ़वाल में ऐसा कोई गांव नहीं जिसमें छोटा–मोटा स्थान (मन्दिर) नागराजा का न हो और जिसमें वर्षभर पूजन न होता हो। परन्तु उसमें लोग नाग को देवता के भाव से नहीं अपितु भगवान कृष्ण की उपासना के भाव से पूजते हैं।[26] इससे स्पष्ट होता है कि सम्पूर्ण गढ़वाल क्षेत्र नागपूजा परम्परा से गहराई से जुड़ा है।

नागपूजा से जुड़े अनुश्ठान और पर्व

गढ़वाल में नागपूजा से जुड़े अनुष्ठान एवं पर्व में नागपंचमी का विशेष महत्व है। नागपंचमी श्रावण शुक्ल पंचमी की तिथि को गढ़वाल में विशेष श्रद्धा से मनाई जाती है। मान्यता है कि श्रावण शुक्ला पंचमी को ब्रह्मा ने नागों को नाग माता कद्रू के श्राप से मुक्ति दिलाई थी। इस दिन नागों की पूजा का पर्व मनाया जाता है। इस दिन नागदेवता की पूजा कर दूध, चावल और पुष्प अर्पित किये जाते हैं। मिट्टी या चांदी के नाग बनाकर उनको दूध सें स्नान कराया जाता है तथा उनको दूध–घी से बने हुए पदार्थों का भोग चढ़ाया जाता है। द्वार के दोनों ओर गोबर, मिट्टी, लकड़ी, सोना, या चान्दी के नाग बनाकर रखे जाते हैं।

निष्कर्ष

उपरोक्त अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि गढ़वाल में नागपूजा परम्परा केवल धार्मिक आस्था एवं विश्वास ही नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय चेतना का भी प्रतीक है। यह परम्परा गढ़वाल के लोकजीवन और यहां की ऐतिहासिक निरन्तरता को समझने का महत्वपूर्ण माध्यम है। नागपूजा ने यहां के समाज में प्रकृति संरक्षण, सामूहिकता और सांस्कृतिक पहचान को सुदृढ़ किया है। इसके संरक्षण और वैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता है, ताकि यह अमूल्य लोकधरोहर आने वाली पीढ़ियों तक सुरक्षित रह सके। इस परम्परा को संरक्षित कर लोक संस्कृति की इस अमूल्य धरोहर को बचाया जा सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. मैत्रायणी संहिता, 2.7.15
2. अगुन्तर निकाय, 2, पृ0 72
3. फर्ग्युसन, जेम्स, ट्री एण्ड सर्पेन्ट वर्शिप, एशियन एजुकेशनल सर्विसेज, नई दिल्ली, 1973, पृ0 3
4. फर्ग्युसन, जेम्स, वही, पृ0 5
5. वेक, स्टेनीलैन्ड, सर्पेण्ट वर्शिप एंड अदर एशेस, जॉर्ज रेडवे, लन्दन, 1888, पृ0 87–88
6. वेक, स्टेनीलैन्ड, वही, पृ0 83
7. फर्ग्युसन, जेम्स, वही, पृ0 48
8. फर्ग्युसन, जेम्स, वही, पृ0 5
9. वेक, स्टेनीलैन्ड, वही, पृ0 106
10. जसटा, हरिराम, प्राचीन भारत में नागपूजा और परम्परा, सन्मार्ग प्रकाशन दिल्ली, 1982, पृ0 30
11. महाभारत, आदिपर्व, पृ0 36
12. अग्रवाल, वासुदेव शरण, प्राचीन भारतीय लोकधर्म, पृथ्वी प्रकाशन वाराणसी, 1969, पृ0 68
13. कठोच, यशवन्तसिंह, उत्तराखण्ड का नवीन इतिहास, विनसर पब्लिशिंग कम्पनी देहरादून, 2010, पृ0 34
14. रतूड़ी, हरिकृष्ण, गढ़वाल का इतिहास, भागीरथी प्रकाशन गृह टिहरी, 1988, पृ0 121–122
15. डबराल, शिवप्रसाद, उत्तराखण्ड का इतिहास भाग–1, वीरगाथा प्रकाशन, दोगडा गढ़वाल, पृ0 299, 300
16. 'सिंह', भजनसिंह, आर्यों का आदि निवास मध्य हिमालय, भागीरथी प्रकाशन गृह टिहरी, 1986, पृ0 291
17. उनियाल, हेमा, केदारखण्ड (धर्म, संस्कृति, वास्तुशिल्प एवं पर्यटन), तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ0 525
18. ममगाई, सीताराम, प्रसिद्ध नागतीर्थ सेम–मुखेम, शाश्वत प्रकाशन श्रीनगर गढ़वाल, 2008, पृ0 53
19. नैथानी, शिवप्रसाद, उत्तराखण्ड का सांस्कृतिक इतिहास, पवेत्री प्रकाशन श्रीनगर गढ़वाल, 2006, पृ0 190
20. ममगाई, सीताराम, वही, पृ0 53
21. डबराल, शिवप्रसाद, उत्तराखण्ड यात्रा दर्शन, वीरगाथा प्रकाशन, दोगडा गढ़वाल, पृ0 332
22. नैथानी, शिवप्रसाद, वही, पृ0 190
23. ममगाई, सीताराम, वही, पृ0 326
24. मैठाणी, वाचस्पति, गढ़वाल हिमालय की देव संस्कृति, गांधी हिन्दुस्तानी साहित्य सभा नई दिल्ली, 2004, पृ0 65–66
25. सेमवाल, उमा रमन, श्री गंगोत्री तीर्थक्षेत्र ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन, अभिनव प्रकाशन गंगोरी उत्तरकाशी, 2012, पृ0 112
26. रतूड़ी, हरिकृष्ण, वही, पृ0 121–122।